(गोरख पांडेय की कविता)

समझदारों का गीत

हवा का रुख़ कैसा है, हम समझते हैं
हम उसे पीठ क्यों दे देते हैं, हम समझते हैं
हम समझते हैं ख़ून का मततलब
पैसे की क़ीमत हम समझते हैं
क्या है पक्ष में विपक्ष में क्या है, हम समझते हैं
हम इतना समझते हैं
कि समझने से डरते हैं और चुप रहते हैं

चुप्पी का मतलब भी हम समझते हैं
बोलते हैं तो हम सोच–समझकर बोलते हैं हम
हम बोलने की आज़ादी का
मतलब समझते हैं
टटपुंजिया नौकरियों के लिये
आज़ादी बेचने का मतलब हम समझते हैं
मगर हम क्या कर सकते हैं
अगर बेरोज़गारी अन्याय से
तेज़ दर से बढ़ रही हो
हम आज़ादी और बेरोज़गारी दोनों को
ख़तरे समझते हैं
हम ख़तरों से बाल–बाल बच जाते हैं
हम समझते हैं
हम क्यों बच जाते हैं, यह भी हम समझते हैं

हम ईश्वर से दुखी रहते हैं अगर वह
सिर्फ़ कल्पना नहीं है
हम सरकार से दुखी रहते हैं
कि समझती क्यों नहीं
हम जनता से दुखी रहते हैं
कि भेड़ियाधसान होती है
हम सारी दुनिया के दुख से दुखी रहते हैं
हम समझते हैं
मगर हम कितना दुखी रहते हैं यह भी
हम समझते हैं
यहां विरोध ही वाजिब क़दम है
हम समझते हैं
हम क़दम–क़दम पर समझौता करते हैं
हम समझते हैं
हम समझौते के लिये तर्क गढ़ते हैं
हर तर्क को गोल–मटोल भाषा में
पेश करते हैं, हम समझते हैं
हम इस गोल–मटोल भाषा का तर्क भी
समझते हैं

वैसे हम अपने को किसी से कम
नहीं समझते हैं
हम स्याह को सफ़ेद और
सफ़ेद को स्याह कर सकते हैं
हम चाय की प्यालियों में
तूफ़ान खड़ा कर सकते हैं
करने को तो हम क्रांति भी कर सकते हैं
अगर सरकार कमज़ोर हो
और जनता समझदार
लेकिन हम समझते हैं
कि हम कुछ नहीं कर सकते हैं
हम क्यों नहीं कुछ कर सकते हैं
यह भी हम समझ सकते हैं।

पेज 1 का शेष भाग

शिक्षा का सफ़ाया पूरी तेज़ी पर

वहां भी पढ़ाई के नाम पर दिखावा और व्यापार ही ज़्यादा हो रहा है। सरकारी और सहायता-प्राप्त कॉलेजों में 5000 से अधिक प्राध्यापकों के पद रिक्त पड़े हैं। सहायता-प्राप्त कॉलेजों में जहां सरकार वेतन का 95 प्रतिशत अपनी ओर से अदा करती है, उसे निरंतर घटाती जा रही है। जिस पुराने स्टाफ़ का वेतन सरकार दे रही है, बस उसी को जैसे-तैसे निभा रही है, किसी भी नई भर्ती के मंजूरी देने से सरकार ने पूरी तरह से हाथ खींच लिया है। ऐसे में तमाम कॉलेजों में दिहाड़ीदार प्राध्यापकों से पढवाने का काम लिया जा रहा है। यहां चपरासियों का वेतन तो 15 से 20 हज़ार और दिहाड़ीदार प्रोफ़ेसरों का वेतन 10 से 15 हज़ार और वह भी साल में 6 महीने। ऐसे में कोई क्यों प्रोफ़ेसर बनने के लिये पढ़ेगा?

जिन्हें कहीं कोई नौकरी न मिले वे स्कूल में मास्टरी करने को मजबूर होते हैं। इसके लिये डी.एड और बी.एड पास करना अनिवार्य है। नौकरी की गारंटी समझने के धोखे में 12 वीं पास बच्चे डी.एड और स्नातक बी.एड की डिग्री प्राप्त करने के लिये काफ़ी मारा-मारी करते हैं। लोगों की मजबूरी को पैसा कमाने का एक बड़ा ज़रिया बनाते हुए सरकार ने राज्य भर में सैंकड़ों प्राइवेट डी.एड और बी.एड कॉलेज खोल रखे हैं। बिना किसी उचित भवन व स्टाफ़ के ये नाम-मात्र के ही कॉलेज प्रत्येक छात्र से मोटी-मोटी फीसें लेकर उन्हें डिग्रियां मात्र देते हैं। इन कॉलेजों में पढाई की कोई व्यवस्था न होने के बावजूद, ये उन छात्रों से डबल फ़ीस लेते हैं जो इनके नकली कॉलेजों में उपस्थित हुए बिना ही अपनी उपस्थिति दर्ज करवाना चाहते हैं।

इस तरह के 'पढ़े-लिखे' एवं 'डिग्री धारकों' से कोई उम्मीद भी क्या कर सकता है। वे भला कैसे किसी परीक्षा में पास हो सकते हैं? दरअसल इन लोगों को विश्वास होता है या यूं कह लीजिये कि इन्हें राजनेताओं द्वारा विश्वास दिलाया जाता है कि एक बार कोई डिग्री-डिप्लोमा ले आओ फ़िर वे कहीं न कहीं उन्हें 'चिपवा' देंगे। बस इसी भरोसे के बूते पर ये लोग डिग्री प्राप्ति की अंधीदौड़ में अपना कीमती समय और खून पसीने की कमाई को निवेश करने में लगे रहते हैं। हां, इनमें से कुछों का जुगाड़ लग भी जाता है और वे राजनेताओं के प्रभाव से किसी न किसी सरकारी पद पर चिप भी जाते हैं। फ़िर वहां बैठ कर जनता की ऐसी तैसी करते हैं।

सुधी पाठकों को शायद याद होगा कि गत वर्ष हरियाणा सरकार ने जब स्कूल शिक्षकों की भर्ती के लिये घोषणा की तो उसमें 'पात्रता' परीक्षा पास करने की शर्त हटा दी गयी थी। लेकिन व्यापक विरोध और न्यायपालिका के दखल के भय को देखते हुए सरकार ने इस शर्त को फ़िर से लगा दिया था। इस शर्त को हटाने के पीछे राजनेताओं का मकसद केवल इतना ही था कि वे अपने उन नालायक चहेतों को भी भर्ती कर सकें जो 'पात्रता' परीक्षा को पास नहीं कर सके थे।

विदित है कि सरकारी आंकड़ों के मुताबिक राज्य के 27 लाख बच्चे हरियाणा सरकार के स्कूलों में तथा 18 लाख बच्चे प्राइवेट स्कूलों में पढ़ते हैं। लेकिन वास्तव में सरकारी स्कूलों में इतने बच्चे पढ़ते नहीं हैं। अनेकों स्कूलों, खासकर ग्रामीण स्कूलों में शिक्षक अपनी सरकारी नौकरी बचाये रखने के लिये बच्चों के फ़र्जी नाम दर्ज कर लेते हैं जबकि वे पढ रहे किन्ही प्राइवेट स्कूलों में होते हैं। ऐसा एक मामला तो गत वर्ष फ़रीदाबाद शहर के स्कूल में भी पकड़ा गया था।

यहां यह जानना जरूरी है कि लगभग सभी प्राइवेट स्कूलों व केन्द्रीय विद्यालयों का परीक्षा-परिणाम शतप्रतिशत रहता है। केवल कुछ पिछड़े एवं ग़रीबी के मारे स्कूलों का परिणाम ही इस से थोड़ा कम आता है। लेकिन वह सरकारी स्कूलों से तब भी दोगुणा बेहतर होता है। यह तथ्य भी किसी से छिपा नहीं है कि बढिया माहौल में बढिया पढाई करके सफ़ल होने वाले बच्चे कभी भी शिक्षक बनना पसंद नहीं करते और हरियाणा सरकार के स्कूलों में तो कतई नहीं। इस सेवा में केवल वही आते हैं जिन्हें कहीं कोई और ठोर-ठिकाना न मिले। जाहिर है इस सबके लिये वह सिफारश शिक्षा-विरोधी माहौल उत्तरदायी है जो सरकार ने अपने शिक्षा विभाग में बना रखा है। पात्रता परीक्षा का परिणाम देख कर हरियाणा स्कूल शिक्षा बोर्ड ने डी.एड की डिग्रियां बेचने वाले संस्थानों का खुद, तथा बी.एड की डिग्रियां बेचने वाले संस्थानों का निरीक्षण करने के लिये विश्व-विद्यालयों को पत्र लिखा है। इस तरह का पत्र लिखकर बोर्ड एवं सरकार किसको धोखा देना चाहते हैं? किसको नहीं पता कि इन नकली संस्थानों में किसी प्रकार के शिक्षण की कोई व्यवस्था नहीं है। बी.एड के तो शायद ही किसी कॉलेज में क्वालिफ़ाइड प्रिंसिपल हो। कुछेक तो फ़र्जी डिग्रियों के बल बूते पर प्रिंसिपल बने बैठे हैं।

आज सरकार इन संस्थानों का फ़िजिकल वेरिफ़िकेशन यानी मौके पर जाकर मुआयना कराने की बात कर रही है, तो क्या अब तक बिना मौका-मुआयना कराये ही इन्हें डिग्रियां बेचने का लाइसेंस दे रखा था? नहीं, बिल्कुल नहीं। समय-समय पर इनका वैरिफ़िकेशन होता रहता है।

पिछले दिनों 'मज़दूर मोर्चा' द्वारा इस बाबत कई समाचार व लेख प्रकाशित करने के बाद विशेष वैरिफ़िकेशन कमेटियों द्वारा भी यह काम करवाया गया था। लेकिन इसके बावजूद शिक्षा जगत का पाखंड ज्यों का त्यों जारी रहा। जाहिर है चांदी के जूते के सामने किसी जांच अथवा कमेटी की कोई हैसियत नहीं होती। उसी का परिणाम आज सामने आ रहा है और अभी क्या है अभी तो इससे भी भयंकर परिणाम सामने आने वाले हैं क्योंकि चोरों की इस सरकार ने लफ़्फ़ाजी के अलावा कुछ भी करना कराना नहीं है।

मिड-डे-मील : नोट और वोट बटोरने का एक सरल तरीका

सरकार ने पहली से पांचवी जमात तक के बच्चों के लिये 2 रुपया 70 पैसे तथा आठवीं तक के बच्चों के लिये 3 रुपया 70 पैसे का भोजन प्रति दिन देने का प्रावधान किया है। यद्यपि भ्रष्टाचार का न होना असंभव है, फ़िर भी यदि मान लिया जाये कि सरकार द्वारा निर्धारित पूरी रकम का भोजन बच्चों को ख़िलाया जा रहा है तो भी इन दामों में आज की इस मंहगाई में आता ही क्या है। केवल सरकारी सड़ा हुआ अनाज ही।

मौत के तांडव के बाद अब बिहार सरकार कह रही है कि वह 65000 रसोईये भर्ती करेगी, उन्हें रसोई का प्रशिक्षण देगी, खाना पकाने व खाने के उचित बर्तन खरीदेगी। जाहिर है ऐसा ही अन्य राज्य भी करने की घोषणा करेंगे। अब देखने वाली बात यह है कि स्कूल में पढ़ने-पढ़ाने की जो मौलिक आवश्यकतायें एवं कमिया हैं उनको पूरा करने की बजाये स्कूलों को भोजनालय बनाने पर ज़ोर दिया जायेगा। अगर सरकार को भूखे बच्चों की वास्तव में ही चिन्ता है तो उन्हें सूखा राशन क्यों नहीं दे देती जिसे वे घर से पकवा कर ला सकें? अथवा अन्य नकद भुगतानों की तरह इसका भी नकद भुगतान क्यों नहीं कर देती?

जनता को धोखा देकर वोट बटोरने के लिये यही एक मात्र कारनामा नहीं है सरकार का। 'शिक्षा का अधिकार' व 'खाद्य सुरक्षा' कानून बना कर भी सरकार यही कुछ कर रही है। मनरेगा व जवाहरलाल नेहरू अर्बन रिन्यूअल मिशन, आंगनबाड़ी आदि भी इसी धूर्ततापूर्ण रणनीति का हिस्सा बना कर चलाए जा रहे हैं।

मेडिकल दाखिले बेचने का खुला लाइसेंस जारी हुआ सुप्रीम कोर्ट का छुरा : नागरिक की पीठ

पर इस फ़ैसले ने वह आशा भी समाप्त कर दी। यानी अब वे पहले की तरह 'उफ़' भी नहीं कर सकेंगे। सुप्रीम कोर्ट द्वारा नागरिकों की पीठ में छुरा घोंपने का एक निरंतर सिलसिला रहा है। इमरजेंसी (1975-77) के काले दौर में सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ ने नागरिकों की स्वतंत्रता एवं उनके जीवन के अधिकार को मानने से ही इन्कार कर दिया था। यदि बेकसूर की जान भी सरकार ले-ले तो बकौल सुप्रीम कोर्ट उसके पास कोई फ़रीयाद करने का रास्ता नहीं था। न्यायमूर्ति एच आर खन्ना एकमात्र जज थे जिन्होंने इस फ़ैसले में असहती का निर्णय दिया था और जिसकी कीमत उन्हें मुख्य न्यायाधीश के पद से चुकानी पड़ी। वरिष्ठतम होने के बावजूद जब उन्हें मुख्य न्यायाधीश नहीं बनाया गया तो वे स्वेच्छा से इस्तीफ़ा दे गये और इस तरह उन्होंने कुछ हद तक सुप्रीम कोर्ट की मर्यादा बचाई।

अगला निहायत बेशर्मी से भोंका गया छुरा था भोपाल गैस-त्रासदी (दिसम्बर 1984), जिसमें लाखों लोग कई पीढियों तक मरते-खपते जा रहे हैं, पर कानूनी लीपापोती का। सुप्रीम कोर्ट के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश आर एस पाठक ने उस मानव-त्रासदी के तमाम बड़े गुनहगारों समेत दोषी यूनियन कार्बाइड नामक अमेरिकी कम्पनी को अभयदान वाला फ़ैसला पकड़ा दिया। दिखावे के लिये अपनी मर्जी से 273 करोड़ का मुआवज़ा घोषित कर पाठक ने सारे मामले को निपटा दिया। कुल 4,75,000 व्यक्ति इस त्रासदी में प्रभावित चिन्हित किये गये और उनमें से अधिकांश आज तक भी एक अपाहिज का जीवन जीने व उचित मुआवजे की लड़ाई लड़ने को मजबूर हैं।

एक और गहरा वार तब देखने में आया जब दिसम्बर 1992 में उत्तर प्रदेश की भाजपा सरकार और केन्द्र की कांग्रेस सरकार के देखते-देखते अयोध्या की बाबरी मस्जिद तथाकथित कार सेवकों की गुंडई की भेंट चढ गयी। यह शीर्ष भाजपाई नेतृत्व की मौजूदगी में हुआ था। तत्कालीन मुख्यमंत्री उत्तर प्रदेश भाजपाई कल्याण सिंह ने सुप्रीम कोर्ट में शपथपत्र देकर मस्जिद की रक्षा का दायित्व लिया था। कायदे से कल्याण सिंह को मस्जिद टूटने का ही नहीं बल्कि उसके बाद भड़के व्यापक साम्प्रदायिक दंगों एवं आतंकी कार्यवाहियों में हज़ारों लोगों के मारे जाने का भी दोषी करार दिया जाना चाहिये था। पर सुप्रीम कोर्ट ने उसे सिर्फ़ एक दिन की सज़ा का मुंहदिखावा करके अपने कर्त्तव्य की इतिश्री कर ली। उस दौरान दर्ज हुए मुकदमे आज तक भी सिरे नहीं चढ सके हैं। देश के नागरिकों के प्रति पीठ फ़ेरने के सुप्रीम कोर्ट के दो निहायत शर्मनाक प्रसंग 1984 के सिख-नरसंहार और 2002 के गुजरात मुस्लिम-नरसंहार के दौर में देखने को मिले। इन नरसंहारों में खुलेतौर पर क्रमशः कांग्रेसी एवं भाजपाई सरकारें पूरे जोर शोर से लिप्त थीं। भारतीय संविधान के आपातकालीन प्रावधानों के मुताबिक सुप्रीम कोर्ट को चाहिये था कि वह सम्बन्धित राज्यों में संवैधानिक मशीनरी के पूरी तरह टूट जाने का निर्णय सुनाती। इस हालत में राष्ट्रपति के पास इन सरकारों को तुरन्त बर्खास्त करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं बचता। इस तरह हज़ारों निर्दोष जानें बचाई जा सकती थीं। पर नागरिकों की पीठ में छुरे घोंपना चलता रहा।

इन नरसंहारों के प्रमुख आरोपियों को आज भी दनदनाते हुए देखा जा सकता है। ये चंद उदाहरण प्रत्यक्ष दिनदहाड़े छुरेबाज़ी के हैं। अप्रत्यक्ष छुरेबाज़ी तो आये दिन का काम है। सरमायेदारों की लूट को वैधानिकता दे कर आम नागरिक की वंचना को सही ठहराना सुप्रीम कोर्ट में रोज़ाना होते देखा जा सकता है। सच्चाई तो यह है कि आम नागरिक के पास संप्रीम कोर्ट की सीढ़ियां चढ़ पाने लायक दाम हो ही नहीं सकते। ■